नंद चतुर्वेदी

शिक्षा : लोक और अभिजन की तकरार

लोककथाएँ कविताओं से ज्यादा स्वादिष्ट होती हैं। इन कथाओं में शब्द की अभिधा शक्ति अपनी अबाध रंगत से खुलती है और सीधे-सीधे वार करती है। लोक कथाओं ने अभिजनों की संस्थाओं, व्यवस्थाओं और अभिरुचियों की जम कर खिल्ली उड़ाई है और समानान्तर आलोचना-विमर्श तैयार किया है। लोक साहित्य में यह तनाव इतना ज्यादा खुला और व्यक्त है तब भी साहित्य के 'शालीन पंडितों' और 'समीक्षकों' ने इस तरफ नहीं देखा है और न इस 'निम्न कोटि के साहित्य' को सामाजिक संरचना के आधारभूत सबूतों की तरह शामिल किया है। इसलिए यह तकरार नजर नहीं आती। जहाँ कहीं नजर आती है वहाँ काव्य-शास्त्र को विनोद और रस की मंजूषा मानने वाले इसे 'शाश्वत साहित्य' से पृथक कर देते हैं।

यह बात ध्यान देने जैसी है कि लोक-कथाओं में सम्पूर्ण जीवन और उसकी परम्परा पर निडर होकर रोशनी डाली गयी है। जहाँ जो सौन्दर्य-विहीन है, जिन्दगी का विनाश करने वाला या संतुलन को नष्ट करने वाला है वहाँ उसका उपहास है, कोई-न-कोई घमंड तोड़ने वाली वक्रोक्ति या अन्योक्ति-कथन है, कोई चतुराई भरा संवाद या श्लोक है, आकाशवाणी या अभिशाप है। गहन दार्शनिक विषयों पर शास्त्रार्थ है या सनातन प्रश्नाकुलता।

लोक-साहित्य का मिजाज एक निर्द्वन्द्व आलोचक की तरह है जो यह मानता है कि कहीं भी और किसी के अन्त:पुर में झाँकना-ताकना गैरवाजिब नहीं है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और किसी भी किस्म की गैर-बराबरी के सीमान्तों पर निगहबानी करना और वहाँ खड़े परम नैतिक और धर्म-प्रवीण थानेदारों के अहंकार की धज्जियाँ उड़ाना उसकी प्राथमिकता में शामिल है।

अपनी स्थापना के समर्थन में मैं आपको केवल दो लोककथायें लिख देता हूँ जो अपने समय के महापंडितों का मान-मर्दन करने के प्रसंग में है। शिक्षा के दुर्लभ अधिकार को पाकर मदांध कुलीन जितने इतराये-बौराये फिरते हैं उनका नशा उतारने के लिए पूरा गाँव-समुदाय मिलकर शास्त्रार्थ का खेल रचता है और केवल भय के मनोविज्ञान से इतराये काशी-प्रशिक्षित पंडित का नूर उतार देता है। कथा में यह ईर्ष्या दंश उस शिक्षा-व्यवस्था को लेकर भी है जिसके चलते सिर्फ अभिजन या कि कुलीन ही शिक्षित होते हैं और अधिकांश दबे-कुचले लोग हाशिए पर बैठ अपने-अपने परम्परागत नीरस व्यवसाय से जिन्दगी चलाते-चलाते मर जाते हैं। अवसर न मिलने और सामाजिक गैर-बराबरी की तकलीफों, प्रतिहिंसा के तनावों को सहते हुए वे इन कथाओं के जरिए उन पोथी-पंडितों की हेकड़ी उतार देते हैं जो शास्त्रों के नीरस ज्ञान और आडम्बर ढोते-ढोते बूढ़े बैल हो जाते हैं।

चलिए, अभिजात्य और शिक्षा के दंभ को एक अनोखे जनतांत्रिक अंदाज से तोड़ने वाली इस लोक कथा को पढ़ें। युवक आदित्य प्रकाश अपने नगर ब्रह्मपुर लौट आया था। उसने काशी के पंडितों से शिक्षा ग्रहण की थी जिसका उसे गर्व भी था और गौरव भी। अब जैसे अमेरिका या यूरोप के किसी देश से लौटा कुलीन किसी-न-किसी बहाने, बात करते-करते वहाँ के ऐश्वर्य के वर्णन से परितृप्त होता नजर आता है, आदित्य भी किसी न किसी प्रसंग पर इतरा कर काशी की अद्वितीयता के वर्णन में रम जाता है। वह साथियों को अपनी योग्यताओं, वाक्-पटुता और शास्त्रार्थों के वृत्तान्त बताते यह कहना नहीं भूलता कि उसने विश्व प्रसिद्ध पुस्तकों को इतनी बार छुआ, देखा और पढ़ा है कि उनकी आकृतियों से उनका नाम बता सकता है।

ब्रह्मपुर के जन-पद में यह प्रसिद्धि फैली हुई थी कि आदित्य प्रकाश आकृति से पुस्तक पहचान जाते हैं। इस प्रसिद्धि ने अहंकार और आत्मश्लाघा के शिखर छू लिए थे। पास के प्रीतिपुर वाले इन दर्पोक्तियों से थक गये थे। उन्होंने निश्चय किया कि वे काशी के युवा पंडित को मात देंगे। प्रीतिपुर की तरफ से यह कहला दिया गया कि यदि उनकी पुस्तक को पं. आदित्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाश चीन्ह लेते हैं तो वे ब्रह्मपुर नगर के बीचोंबीच आदित्य के बाबा पं. ललित नारायण की मूर्ति स्थापित करेंगे। हारने पर प्रीतपुर की पाठशाला में आदित्य पाँच वर्ष तक पढ़ायेंगे। दोनों पक्ष सहमत हो गये।

निश्चित हुए दिन एक विशाल गाड़ी पर 'तिलकाष्ठमहषिबन्धनम्' नामक महाग्रंथ रेशमी वस्त्र से सजाकर रखा गया। इस विशाल गाड़ी को तीन बैलों की जोड़ियों से खींचा जा रहा था। इधर से शास्त्रार्थ के लिए तैयार किये गये रवीन्द्र भारती गाड़ी के आगे चल रहे थे। पीछे चल रहे प्रसन्नचित्त गाँव वाले जय बोलते जा रहे थे।

उधर आदित्य अपने जनपद में प्रसिद्धि विस्तार के लिए अत्यन्त उत्साहित थे। जिस तरफ से ग्रंथ लेकर गाँव वाले आ रहे थे उधर वे बार-बार देखते, कुछ कदम चल कर जाते और लौट आते। कुछ दिन चढ़ने पर उन्होंने दूर धूल उड़ती देखी और जय-जयकार सुनी। थोड़ी देर में उन्हें गाड़ी और जन-समूह दिखाई दिया। कुछ अचंभे के साथ उन्होंने तीन जोड़ी बैलों से खींची जाने वाली गाड़ी देखी। उन्हें कुछ-कुछ ऐसा लगा कि उसमें जैसे कोई ग्रंथ रखा हो। आदित्य एक क्षण को भय-कम्पित हुए लेकिन फिर साहस के साथ सभास्थल पर पहुँच गए।

दोनों ओर के दर्शक प्रतिस्पर्धा का आनन्द लेने के लिए उत्सुक थे। महाग्रंथ की गाड़ी नियत स्थान पर खड़ी थी। प्रीतिपुर के पंडित रवीन्द्र भारती और काशी के स्नातक आदित्य नारायण के बीच औपचारिक अभिवादनादि के बाद रवीन्द्र भारती ने विनम्रतापूर्वक आदित्य नारायण से गाड़ी पर रखे महाग्रंथ का नाम बताने को कहा।

आदित्य नारायण दरअसल मन-ही-मन हार चुके थे। गाड़ी पर रखे विशाल ग्रंथ को, जिसे तीन पुष्ट बैलों की जोड़ी खींच कर ला रही थी, दूर से देख कर ही आदित्य भय और अवसाद से घिर गये थे। वे उस महाग्रंथ का नाम नहीं बता सके, जिसका कोई नाम था ही नहीं। वह तो प्रीतिपुर वालों ने काशी से आये इस स्नातक (ब्राह्मण) की हेकड़ी खत्म करने के लिए अपनी प्रत्युत्पन्नमति (कुशाग्र बुद्धि) से तिल के डंखलों को सजा कर भैंस के जेवड़ों से बाँध (तिलकाष्ठ-महषिबंधनम्) दिया था।

इस तथ्य को मैं दुहरा दूँ कि जीवन के विभिन्न पक्षों की निगहबानी करने के लिए लोक ने कोई अटल सिद्धान्त या सूत्र न बनाये हों लेकिन अपने हितों की निगरानी करने की दक्षता उसने निरन्तर दिखाई है। शिक्षा के बारे में लोक की यह जागरुकता विलक्षण है। किस मुद्दे पर लोक ने अभिजन से तकरार नहीं की है? लेकिन प्राथमिकता लोकमंगल की, विस्तार की, बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय की है। इधर शिक्षा की बात करें तो शास्त्र-ज्ञान के विरुद्ध दुनिया के काम आने वाली सुमति के पक्ष में लोक-कविता ने जबरदस्त दस्तक दी है। कबीर ने उबाऊ 'पोथी ज्ञान' के बरकस दुनिया का 'आँखों देखा' ज्ञान शिरोधार्य किया है और संकीर्ण संस्कृत-कूप-जल के बजाए बहते भाषानीर से अपनी कविता का समर्पण। लोक ने पंडिताऊ दुरभिमान का मौका मिलते ही प्रतिवाद किया और 'भोले भावों' की रचना करने वाली जन-शिक्षा का समर्थन। विश्वविद्यालयों के 'तकनीकी ज्ञान' की खिल्ली उड़ाती यह लोक-कथा की विदग्ध आलोचनात्मक दृष्टि के गहरे बोध की जानकारी देगी।

ये श्रीधर शास्त्री हैं, कुलीन ब्राह्मण और काशी के शिक्षित-स्नातक। कई शास्त्रार्थों के विजेता। काशी-निवास करते हैं और शास्त्र अनुमोदित मार्ग पर चलते हैं। इस समय श्वसुर-घर जा रहे हैं। कोई गाड़ी, घोड़ा, पालकी या रथ श्रीधर के पास नहीं है। कई बीहड़ जंगलों को पार करते जाना पड़ेगा शास्त्रीजी को। बहरहाल, अब तक तो कोई कष्ट नहीं आया था लेकिन अब एकदम सामने मृत गधा पड़ा है, शायद, मरे हुए दिन-दो-दिन हुए हों। शरीर फूल गया है, दुर्गंध के कारण साँस लेना कठिन है। चारों तरफ घेर कर बैठे गिद्ध और कौवे लाश को लेकर भयानक उपद्रव कर रहे हैं।

क्या करें श्रीधर शास्त्री?

क्या कहता है शास्त्र? शास्त्र कहता है शव का दाह-कर्म करो। श्रीधर शास्त्र के निर्देश का पालन करेंगे। वे गधे को उठाकर सम्मानपूर्वक श्मशान तक ले जाने की कोशिश में लग गये। लाख कोशिश करने पर भी भारी गधा टस-से मस न हुआ। शास्त्री इस प्रयत्न में थक गये। अब क्या कहता है शास्त्र?

कहता है कि शरीर में सबसे महत्त्वपूर्ण सिर है। उसका दाह कर्म कर दो। लेकिन गधे का सिर कहाँ है? इस असमंजस में उन्होंने मृत गधे की गरदन काटने का निश्चय किया। तेज धार वाले किसी शस्त्र के न मिलने के कारण गरदन काटने का काम भी नहीं हो सका। श्रीधर चिंता में पड़ गये। सहसा ही जैसे बिजली कौंधी हो उन्हें शास्त्र-वचन याद आया कि आँख ही रोशनी का केन्द्र है इसलिए सिर न हो तो आँख से भी काम चल सकता है। किसी तरह किसी भी क्रूरता से मरे हुए गधे की आँख निकाल कर श्रीधर शास्त्री ने दाह संस्कार किया। अब उन्हें यह चिंता सताने लगी कि वे 'भद्र' नहीं हुए हैं। यानी उन्होंने न तो सिर का मुंडन कराया है न मूँछे, दाढ़ी मुँडवाई हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी तरह वे गाँव के एक नाई को ढूँढ़ सके जिसके भोथरे उस्तरे से उन्होंने अपने सिर के बाल मुँडवाए और मूँछें, दाढ़ी साफ करवाईं। मार्ग की पवित्र नदियों के घाटों पर वे गधे की आत्मा की शान्ति-प्रार्थना करते रहे जो बिचारा जीवन भर दूसरों के लिए बोझ ढोने-उठाने के लिए अभिशप्त रहा। जो हो, गधे की आत्मा को शान्ति मिली या नहीं यह विवादित है किन्तु श्रीधर की आत्मा को अवश्य शान्ति मिलती रही।

यों दो-तीन दिन की यात्रा करते थके-हारे 'भद्र' (लोक शब्द 'भद्दर)' हुए श्रीधर शास्त्री किसी एक सुबह ससुराल के गाँव के सीमान्त पर नजर आए। तभी शौचादि के लिए आई उनकी साली ने उन्हें देखा-पहचाना। जीजाजी के आने की खुश-खबरी सुनाने के लिए वह फुर्तीली युवती अपनी माँ और जीजी के पास पहुँची। जो वर्णन उसने किया उसमें जीजाजी के 'भद्र' होने का भी था। जाहिर है कि श्रीधर शास्त्री की सास और पत्नी को उनके किसी निकट प्रियजन की मृत्यु के कोई पूर्व समाचार न होने से केवल अंदाज लगाना ही संभव था। तब भी उन्होंने जामाता के आने से पूर्व रोना-धोना और दारुण शोक प्रदर्शन शुरू कर दिया। परम्परानुसार आसपास की स्त्रियाँ भी आ गईं जिन्हें कोई बात मालूम नहीं थी और न मालूम करने की इच्छा।

इधर जामाता श्रीधर शास्त्री ससुराल पहुँच गये। वे थोड़े चकित होकर अपने बैठने के लिए उच्च स्थान ढूँढ़ने लगे। जामाता के स्वागत के लिए जो शास्त्रोक्त वर्णन उन्होंने पढ़ा था उसमें लिखा था 'उच्च स्थानेषु पूज्येषु' यानी पूज्य के लिए उच्च स्थान आवश्यक है। उन्हें जल्दी ही घास की ऊँची गंजी नजर आ गयी। वे उसी ऊँचे और पूज्य स्थान पर जा चढ़े और तब तक बैठे रहे जब तक उचित स्थान की व्यवस्था नहीं कर दी गई।

रात हो चली थी। गाँवों में सूर्यास्त के बाद रात जल्दी आ जाती है। श्रीधर शास्त्री जल्दी ही शयनकक्ष में पहुँच गये। उनके पहुँचने के बाद उनकी रूपवती पत्नी शीलभद्रा वहाँ पहुँची। रूप की उस दीप-शिक्षा को देखते ही श्रीधर शास्त्री मन-ही-मन वह सुप्रसिद्ध उक्ति दुहराने लगे 'रूपवती भार्या शत्रु' यानि रूपवान भार्या दुश्मन होती है। तब वे क्या करें? कुरूप बनाने के क्रम में उन्हें उसे एक आँख वाली कर देने का उपाय सूझा। लेकिन 'एकाक्षी कुल नाशनी' यानी एक आँख वाली वंश डुबो देगी—यह शास्त्र-वचन याद आया। इधर शीलभद्रा को पति के कलुषित भाव समझने में देर न लगी। वह क्रुद्धसिंहनी की तरह छलाँग लगा कर श्रीधर को अकेला छोड़कर चली गई और लौट कर 'एकाक्षी' और कुरूप होने के लिए कभी नहीं लौटी।

दुर्भाग्य से हमारी शिक्षा अभिजात्य वर्ग की जिस खुशामद करने वाली परम्परा से जुड़ी है वह उन जीवन-मूल्यों से भी जुड़ी है जिसमें संशय करना, बोलना, मूल्यों का प्रतिसंसार रचना मना है। लेकिन आप लोक-साहित्य को बोलते, तकरार करते, लोक-व्यवहार के सुरुचिपूर्ण मूल्यों के पक्ष में खड़े होने की निर्भीकता को देखेंगे तो दंग रह जायेंगे।

अहिंसापुरी, उदयपुर

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org